

मध्यकालीन संतों की भक्ति चेतना और संत केशो जी

डॉ. सुरेंद्र कुमार विश्वोई
एसोसिएट प्रोफेसर (हिन्दी विभाग)
दयानंद महाविद्यालय, हिसार

आत्मा और परमात्मा के मिलन के अनेक साधनों में भक्ति सरलतम साधन माना गया है। निष्कपट भाव से अपना त्याग, परमात्मा के अस्तित्व तथा सर्वशक्तिमयता की स्वीकृति एवं उसकी प्रत्यक्षानुभूति के प्रति सचेतन प्रयत्न ही भक्ति है। सर्वसमर्पण और प्रेम ही इसका प्राण है। 'धर्म के क्षेत्र में आराध्य ईश्वर या देवता के प्रति वह श्रद्धापूर्ण अनुराग जिसके फलस्वरूप वह सदा उसका अनुयायी रहता है, अपने आपको उसका वशवर्ती मानता है, भक्ति है।'¹ शांडिल्य के मतानुसार ईश्वर में निरतिशय अनुराग का नाम भक्ति है।² वल्लभाचार्य के अनुसार- भगवान में महात्म्य पूर्वक सुदृढ़ और सतत स्नेह भक्ति है।³ अपने व्यापक अर्थ में भक्ति केवल भजन करना नहीं है अपितु अपनी सभी कामनाओं का त्याग कर, एकनिष्ठ होकर प्रभु के प्रति प्रेमपूर्वक समर्पित होना ही भक्ति है। स्वामी विवेकानंद ने इसका आरम्भ मध्य और अंत सब कुछ प्रेम में ही माना है।⁴ भक्ति स्वभाव से ही रस, रूप, दिव्य एवं चिन्मय है। वह तत्त्व ज्ञान रूपी फल का अनुपम रस है। रस उसे नहीं कहते जिसमें क्षति हो अथवा तृप्ति हो। जो तत्त्व क्षति या तृप्ति से रहित है, वह स्वरूप से ही अगाध तथा अनन्त है, पर यह रहस्य तभी खुलता है, जब भक्त अपनी इसकी स्वाभाविक मांग से निराश नहीं होता, बल्कि उसके लिए नित्य नव उत्कण्ठापूर्वक लालायित रहता है। 'भक्ति वह प्यास है, जो कभी बुझती नहीं और न ही उसका नाश होता है, अपितु वह उत्तरोत्तर बढ़ती ही रहती है।'⁵

भक्ति का उद्भव और विकास- भारत के आदि साहित्य वेद संहिता तथा ब्राह्मण ग्रंथों में यद्यपि भक्ति शब्द का स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता किन्तु देवताओं की स्तुतियों में स्तोता के हृदय की सर्वतोभावेन प्रेम एवं अनुराग की भावना व्यक्त हुई है। इन प्रेम संबलित भावुक स्तुतियों में हम भक्ति के बीज स्पष्ट रूप से देख सकते हैं। जहाँ तक भक्ति के विवेचन की बात है, तो यह कार्य सर्वप्रथम श्वेताश्वतर उपनिषद् में ही हुआ है- श्वेताश्वतर उपनिषद् (6/21) में उस परम प्रभु के प्रसाद से ही सिद्धि की प्राप्ति का उल्लेख हुआ है। जिस पुरुष की देवता में उत्कृष्ट भक्ति होती है, उसी महात्मा के कहे गये अर्थ स्वतः प्रकाशित होते हैं। उपनिषद् साहित्य में यह 'भक्ति' शब्द का प्रयोग प्रथम बार माना जाता है। यद्यपि उपनिषदों में दर्शन एवं ज्ञान की धारा प्रबल है, फिर भी भक्ति अंतःसलिला की भांति सरस धारा बनकर बही है। गीता में कर्म, ज्ञान और भक्ति तीनों का सुंदर समन्वय है।

आगे चलकर सात्वतों के उदय से (1500 ई.पू.) पांचरात्र मत में भक्ति को एक आंदोलन का रूप प्राप्त होता है। वैष्णव धर्म की प्राचीनतम संज्ञा ही भागवत धर्म या पांचरात्र मत है। इसी वैष्णव भक्ति का विस्तार हमें पुराणों में देखने को मिलता है, क्योंकि अठारह पुराणों में से लगभग नौ पुराणों का संबंध वैष्णव धर्म से नितांत स्फुट है। सब पुराणों में प्रसिद्ध भागवत पुराण को तो भक्तिशास्त्र का विश्वकोष माना जाता है। इसमें भक्ति के सभी तत्वों एवं सिद्धांतों का मार्मिक विवेचन प्रस्तुत किया गया है। जहाँ तक भक्ति की शास्त्रीय व्याख्या की बात है, तो यह हमें शांडिल्य भक्ति सूत्र (100 सूत्र) एवं नारदभक्ति सूत्र (84 सूत्र) में मिलती

है। इन दोनों सूत्र ग्रंथों में भक्ति की श्रेष्ठता विविध प्रकार से सिद्ध की गई है। आगे चलकर वैष्णव धर्म के विभिन्न आचार्यों ने अपने प्रथक-प्रथक संप्रदायों एवं सिद्धांतों के माध्यम से भक्ति की इस अजस्र धारा को पुष्टि किया।

मध्यकालीन संत साहित्य और केसो जी- आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने राजनीतिक, सामाजिक, साम्प्रदायिक तथा धार्मिक परिस्थितियों एवं तत्कालीन धार्मिक रुचियों के रूप में संचारित और पोषित व्यवस्था के अनुसार हिन्दी साहित्य के इतिहास का जो काल विभाजन किया था, उसमें संवत् 1375 से 1700 तक के काल को मध्यकाल कहा गया है। पुनः विभाजन करते हुए उन्होंने मध्यकाल को पूर्व मध्यकाल (संवत् 1375-1700) और उत्तर मध्यकाल (संवत् 1700-1900) दो भागों में बाँटा है। उत्तर मध्यकाल संत साहित्य की मौलिक मान्यताओं से मेल नहीं खाता, इसलिए पूर्व मध्यकाल ही हमारा आलोच्यकाल है जिसे भक्तिकाल भी कहा जाता है। इसका अर्थ यह कदापि नहीं है कि संवत् 1700 के बाद संत साहित्य की भक्तिधारा बिल्कुल ही कुन्द हो गई हो या इसके बाद रचित भक्ति परक सन्त साहित्य पर हम कोई विचार नहीं कर सकेंगे। उपर्युक्त समय सीमा एक मोटा सा अनुमान है, जो थोड़े बहुत फेरबदल के साथ सभी विद्वानों ने स्वीकार किया है।

सन्त केसो जी- सन्त केसो जी भक्तिकाल के अंतिम पड़ाव में पैदा हुआ एक ऐसा जाज्वल्यवान रत्न है जो अभी पर्दे के पीछे ही जगमगा रहा है। इनका जन्म मीरा, वीरा और पीरा की धरती राजस्थान के बीकानेर जिले की नोखा तहसील के मढ़िया नामक गाँव में हुआ था। इनका जीवनकाल संवत् 1630-1736 के मध्य अनुमानित है। वे बाल्यकाल में ही वैराग्य धारण कर साधु बन गए थे और आजीवन इसी धर्म का पालन करते रहे। संत केसो जी का संबंध गुरु जांभोजी द्वारा प्रवर्तित बिश्नोई सम्प्रदाय से था। समाज सुधार के साथ-साथ उन्होंने प्रभूत मात्रा में साहित्य की रचना भी की थी। इन द्वारा रचित लगभग 3500 छन्द मिलते हैं, जो विभिन्न कथा-काव्यों, फुटकर छंदों, साखियों एवं हरजों के रूप में हैं। उनका साहित्य बहुमुखी है जिसका विस्तृत विवेचन यहाँ संभव नहीं है। यहाँ इतना ही कहना समीचीन होगा कि उनके साहित्य का प्रमुख स्वर भक्ति ही है, जो उस काल की प्रधान प्रवृत्ति थी।

मध्यकालीन संत साहित्य: भक्ति के विविध आयाम और संत केसो जी अनेक विद्वानों ने संतमत का आरम्भ नामदेव से माना है। नामदेव ने जिस निर्गुण पंथ का प्रचार किया था, वह महाराष्ट्र का वारकरी पंथ ही था जिसने कर्मकाण्ड के जंजालों को काटकर सर्वसुलभ भक्ति मार्ग को अपनाया एवं बाह्य आडम्बरों की उपेक्षा कर आन्तरिक प्रेम साधना पर विशेष जोर दिया।⁶ नामदेव से आरंभ हुई भक्ति की यह निराली धारा 18वीं शताब्दी के आरंभ तक पतित पावनी बनकर बहती रही और अन्तः सलिला के रूप में तो आज भी बह रही है और आगे भी बहती रहेगी। नामदेव, कबीर, गुरु जांभोजी, नानक, दातू, रैदास, वीरहोजी, सुरजन जी, सुंदरदास, रज्जब, मलूकदास आदि इस अजस्र धारा के अनेक सुन्दर घाट हैं, जहाँ अनेक भूले-भटके लोगों को मनचाहा मोक्ष सहज ही प्राप्त हुआ है। इन्हीं घाटों के बीच संत केसोजी अपना महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। इन संतों एवं केसोजी की भक्ति के प्रमुख आयाम इस प्रकार हैं-

1. **आराध्य का स्वरूप-** मध्यकालीन संतों के आराध्य देव सर्वव्यापी हैं जो कण-कण में विद्यमान हैं परंतु माया के चित्र-विचित्र चकाचौंध में खोया होने के कारण मनुष्य उसे पहचान नहीं पाता। कबीर कहते हैं कि भगवान का कोई आकार नहीं है बल्कि वह तो पुष्प में सुगंध की भांति कण-कण में समाया हुआ है-

जाके मुंह माथा नहीं, नहीं रूप कुरुप।

पहुप वास ते पातरा, ऐसा तत्व अनूप॥

गुरु जाम्भोजी ने भी पवन की भांति भगवान को सर्वव्यापक माना है-

नदिये नीरू, गागर हीरू, पवना रूप रमै परमेश्वर।⁷

संत केसोजी ने भी भगवान को निर्गुण एवं सर्वव्यापक माना है। उनके अनुसार परमात्मा तिल में तेल, पुष्प में सुगंध, बादल में बिजली और दही में घृत की भांति अदृश्य रूप में सभी प्राणियों में निवास करते हैं। जल, थल और पर्वत कोई भी उससे रहित नहीं है। वे कहते हैं-

तिल में तेल पौहप मां वास, बादल बीज राइ।

दधि मां घृत काया में कायम, रहीयो सकल समाई॥⁸

तिण्य वण्य काठ पखण वियाप, उर मां कीयो अलोचो।

निराकार आकार न होई, कीयो स्यन वहांदिक सोचो॥⁹

जल्य विसन थल्य विसन, विसन प्रवत मसतके।

झाल माला कुले विसनु, श्रब सिन हरो हरो॥¹⁰

परंतु वह मिला उसी तरह जिस प्रकार चकमक पत्थर को रगड़ने से अग्नि और दही को मथने से घृत से मिलता है-

चकमक कड़ अगल्य झलहल, मही मथप मांखण नीकल।

कवल उलटे ज्यों खिल, तो कायम काया में मील॥¹¹

2. **विष्णु उपासना-** संत साहित्य भगवान विष्णु और उसके अवतारों की धूम रही है। कबीर ने भी विष्णु और उसके भक्तों को अति आद की दृष्टि से देखा है तथा वैष्णव की संगति की कामना की है-

मेरे संगि दोई जणां, एक वैष्णै एक राम।

वे है दाता मुक्ति का, वो सुमिरावै नाम॥¹²

विष्णु का अर्थ ही व्यापकता है जो सभी सन्तों को स्वीकृत है। गुरु जाम्भोजी ने तो एक मात्र विष्णु को ही अति महत्व दिया है। संत केसोजी ने भी स्थान-स्थान पर भगवान विष्णु की निष्काम भक्ति करने का उपदेश दिया है-

तजियो गरब गुमान, मन मां मेर न आणियो।

हरिदे धरियो ध्यान, विष्णु-विष्णु बखणियो॥¹³

विष्णु से विरोध करने वाले नीति नहीं रह सकते-

विष्णु दोषी भस्म होसी, सांभलो करतारा।

पारब्रह्म न पहली नीऊं, सिंवरो सिरजणहार॥¹⁴

संत केसो जी रचित 'प्रह्लाद चरित' में विष्णु उपासना विशेष रूप से संचरित हुई है।

3. **नाम स्मरण-** भक्ति के सभी साधनों में नाम स्मरण अपना विशेष स्थान रखता है। संतों ने तो इसे सभी दुःखों को दूर करने वाली प्रभावशाली औषधि बताकर इसको अत्यधिक महत्व दिया है। गुरु नानक ने 'जपुजी' के अन्तिम पद में कहा है कि नाम का जप करने से सभी परिश्रम सफल होते हैं और मुख उज्ज्वल हो जाता है-

जिनि नामु धियाइया, गए मसकति धालि।

नानक ते मुख उजले, केती छूटी नालि॥

नाम जप के प्रति अपनी अनन्य निष्ठा प्रदर्शित करते हुए संत नामदेव जी कहते हैं-

कहा करो जाती कहा करो पांत, राम को नाम जपउं दिन राती।

भगति भाव सून सीवनि सावौं, राम नाम बिनु घरी न जीवौं॥¹⁵

कबीर ने इसे भवसागर से पार उतरने का साधन माना है-

राम नाम निज अमृत सार, सुमिरि-सुमिरि जन उतरे पार॥¹⁶

गुरु जांभोजी ने नाम स्मरण को अत्यधिक महत्व दिया है। उनके अनुसार नाम जपने से जन्म मरण का भय दूर होता है और बैकुण्ठ में वास मिलता है-

विष्णु-विष्णु तू भण रे प्राणी, पैके लाख उपाजू।

रतन काया बैकुण्ठे बासो, तेरा जरा मरण भय भाजू॥¹⁷

संत केसो जी ने भी निःसंकोच भाव से भगवान का नाम जपने की कहा है। उनका मानना है कि नाम जपने से आवागमन मिट जाता है। उन्होंने हृदय की दुकान में प्रभु नाम पसारने की सलाह दी है-

हरि सिंवरो मेरे भाइयो, नांव जपो निरहारी॥¹⁸

निस वासरि निज नांव भजी मन मेरा रे॥¹⁹

सांच पियारो साम नै, सिंवरो सिरजनहार।

जिण सिंवरे सांसो मिटे, आवागुवण निवार॥²⁰

हरदो करि हाट प्रभु नांव पसारै।

खिमां खिड़क सम खोलि दवारै॥²¹

4. **अजपा जाप-** जब साधक प्राथनात्मक मनोवृत्ति की चरम सीमा पर पहुँच जाता है तो उसका होठों वाला जाप छूट जाता है और उसका अंतर्मुखी जाप प्रारम्भ हो जाता है। इस प्रकार के जाप को जहाँ उसकी क्रिया अपने आप चलती है- संतों ने 'अजपा' जाप की संज्ञा दी है। इसमें शब्दोच्चारण और माला फेरने का कोई झंझट नहीं होता। इसमें भक्त के हृदय और आत्मा पर उसके आराध्य के प्रेम का एकाधिकार हो जाता है और उसके रोम-रोम से राम-राम की ध्वनि निकलने लगती है।²² संतों ने इस प्रकार के जाप को बहुत महत्व दिया है। मस्त मलूकदास जी अजपा जाप की इस अनिर्वचनीय आत्मान्तिक स्थिति में पहुँचकर बड़ी लापरवाही के साथ कहते हैं-

माला जपौ न कर जपौ, जिम कहो न राम।

सुमिरन मेरा हरि करै, मैं पाया विसराम॥²³

संत वील्हो जी ने भी 'अजपा' जाप को अत्यधिक महत्व दिया है-

जपिये जाप अजप्या जीकर, भणत तारग मन्त्र भव्य।

तीन्य तंत सत्य जाणीये, सुरग तणां सांसा नगण्या²⁴

संत केसो जी ने भी अन्य संतों की भाँति 'वाच्या ना ऊचेरा' तथा 'अजपा' जाप करके 'उनमुन सूं यारी' करने को कहा है-

अजप्या का सरवण साइंया साहिब करि तेरा।

भांवणि काटो पेड तै, वाच्या न ऊचेरा।²⁵

5. **सत्संगति-** संतों ने सत्संगति को भगवद् प्राप्ति की एक आवश्यक सीढ़ी माना है उनके अनुसार साधुओं की संगति से एक आध्यात्मिक वातावरण की सृष्टि होती है जहाँ पर सभी शंकाएं जमकर भस्म हो जाती हैं तथा मन का मैल दूर होता है। कबीर ने हरि दर्शन हेतु मन रूपी दर्पण की स्वच्छता आवश्यक मानी है-

जो दरसन कीन्हा चाहियै, नितु दर्पन मांजत रहियै।

जो दरपन लागै काई, तौ दरसन कीया न जाई।²⁶

इस मन रूपी दर्पण को मांजने के लिए सत्संग रूपी जल की आवश्यकता होती है, इसलिए दादू कहते हैं-

साध नहीं जल राम रस, तहां परवालै अंग।

दादू निर्मल गल गया, साधुजन को संग।²⁷

संत केसो जी ने जीव को सत्संग में जाने की नसीहत दी है क्योंकि वहाँ जाने से पाप कटता है, सुमति आती है-

जीव के काजै जुमलें जाइये, कीजै गुरु फरमाइये।

सुणिये ज्ञान कटे तन कषमल, ज्ञान सरोवर न्हाइये।।

सुमति आवै साधा संग बैठा, कुमति न आवै काइये।

गहकर ज्ञान सुणों संग साधो, केसो साख सुखाइये।²⁸

सन्त मिलने पर स्वर्ग जैसा उत्साह होता है-

जां दिन संत मिलै मेरा जीयो, बाजै स्वर्ग बधाई।

कामणि कोड कैरे मेरा जीयो, अपछरा मनो उछाई।²⁹

6. **भक्ति की दृढ़ता-** संत दृढ़ निश्चयी भक्त हैं। वे किसी भी कीमत पर लक्ष्य प्राप्ति के बिना पीछे हटने को तैयार नहीं होते। भगवद् प्राप्ति में आने वाले सभी कष्टों से लोहा लेने के लिए वे हर समय तैयार रहते हैं, यहाँ तक कि अपने शरीर को भी तृणवत् न्योछावर कर देते हैं। गुरु नानक कहते भी हैं-

इतु मारगि पैरू धरजै, सिर दीजै काणि न कीजै।³⁰

सीधी-सी बात यह भी है कि ऐसे दृढ़ निश्चय के बिना भगवद् प्राप्ति संभव भी नहीं है। केसो जी की भक्ति में भी ऐसा निश्चय दिखाई देता है-

नारायण का नांव परि, सीदक करू सरीरा।

केस कह कसणी सहै, कह हरिजन कहीरा॥³¹

केसो जी के साहित्य में हरिण्यकश्यप जैसे असुर भी इतनी कठोर भक्ति करते हैं कि उनका शरीर पिंजर बन जाता है और चींटियाँ उसे अपना भोजन बना लेती हैं।

ढल्य काया धरती पड़, तन मन करि चींटी ले गई।

सिरजैण हारो आप सुजाण, पिंजर मांह राख्यौ प्राण॥³²

7. **भ्रम का त्याग-** भ्रम के त्याग के बिना भक्ति संभव नहीं क्योंकि भ्रम मनुष्य को लक्ष्य से भटकाता है। संतों ने अपने साहित्य में भ्रम और उसके त्याग का वर्णन विस्तार से किया है। संत वील्हो जी कहते हैं-

भस्मी नारि भीति कू पूजै, ले ले भोग लगावै।

भोग विलास स्वाद रस जाणै, ढिग उभौ बिललावै॥

संत केसो जी ने भ्रमित व्यक्ति की तुलना कुएं के मेंढक और नलणी से उल्टे लटके तोते से की है-

पांडे सु पढ़ अबूझ अयाणौ, भरम्या बात बखाण।

कुव मां कुद सो मीढ़का, समंद सार न जाण॥³³

भरम्यौ आय भरम्यौ जाय, भरम्यौ आप रह्यौ उलझाय।

ज्यौं सुवटो नलणी ग्रहे रहयो, मन जाण हूं नलणी ग्रहयौ॥³⁴

संत केसो जी सभी भ्रमों का त्याग करके विष्णु भजन करने का उपदेश देते हैं-

बहनामी बली देखियो, बलती टल बलाय।

छाड़ी भरम भजिया सिन, आप लिया उर लाय॥³⁵

8. **भक्ति के बाधक तत्व-** भक्ति भगवद् प्राप्ति का जितना सरल मार्ग है तो उसकी बाधाएँ भी उतनी ही विकट हैं। संत कवियों का ध्यान इन बाधाओं की ओर अनयास ही गया है, इसलिए उन्होंने षट् दुर्गुणों और असन्तों से विशेष सतर्क किया है। कबीर कहते हैं कि जो जानबूझकर सच्चाई का त्याग कर अस्तेय को गले लगाते हैं। हे प्रभु! ऐसे लोगों की संगति हमें स्वप्न में भी मत दो।³⁶ विषय विकार भक्ति मार्ग की सबसे बड़ी बाधा है। इसलिए दादू कहते हैं-

दादू जो साहिब को भवै नहीं, सो जीव न कीजी रे।

परहरी विषै विकार सब, अमृत रस पीजी रे॥

संत केसोजी का ध्यान भी भक्ति मार्ग की मुख्य बाधाओं काम, क्रोध, मद, मोह, माया, लालच एवं अहंकार की ओर विशेष रूप से गया है तथा उन्होंने इन सबके त्याग पर विशेष बल दिया है-

काम क्रोध लोभ तज लालच, मोह माया मद मेटे।

कह केसो साईं जन गरवा, भीतरी भगवत भेटै॥³⁷

फिरै अलूधा मुख्या, मेर करै मन मांहि।

सतगुरु सार न जाण ही, खपि खपि खाली जांहि॥³⁸

9. **आत्मसमर्पण की भावना-** संतों की भक्ति में उच्च कोटि की आत्मसमर्पण की भावना पाई जाती है। उन्होंने अपने आपको सर्वस्व भाव से प्रभु के चरणों में समर्पित कर दिया है। कबीर जी कहते हैं-

को काहू को भरम न जाए, मैं सरनागति तेरी।
कहै कबीर बाप राम राया, हुमति राखहु मेरी॥³⁹

दादू दयाल कहते हैं-

मैं जन बहुत गिरिया, अब तुम ही लेहु संवारी।
समरथ मेरा साइयां, तू आवै आप उधारी॥⁴⁰

केसो जी ने भी परमात्मा को माता-पिता सब कुछ मानते हुए अपने उद्धार की भावभरी प्रार्थना की है-

परमेसर माता-पिता, परमेसर परिवार।
करताजी ने छाड़ि के, लुकुं कहो कीण लार॥⁴¹
राज निवाजै गरीब कूँ, हरि सेवग धारो।
जन केसो की विनती, प्रभु पारि उतारो॥⁴²

10. **भक्ति की सिद्धि-** संतों की भक्ति निष्काम होने के कारण स्वतः सिद्ध है, इसलिए उसकी सिद्धि का कोई प्रश्न नहीं बनता, फिर भी भक्ति को एक साधन के रूप में स्वीकार करने पर पूर्ण निष्काम भावना को उसकी उच्चतम भूमिका के रूप में ग्रहण करना होगा। निष्काम भक्ति की भावना कभी निष्फल नहीं जाती। इसी भगवद्भक्ति रूपी अमृत रस का पान कर आत्मा की साधना यात्रा की सारी श्रान्ति-क्लांति मिट सी जाती है। कबीर के शब्दों में जीवात्मा जन्म-जन्मान्तरों के चक्र में कुंभकार के कलश की भांति चढ़ने से छुट्टी पा जाती है-

कबीर हरिरस यों पिया, बाकी रही न थाकि।
पावन कलस कुम्भार का, बहुरि न चढ़ई चाकि॥⁴³

सन्त केसो जी की भक्ति में भी ऐसी ही सिद्धि सर्वत्र दिखाई देती है। यहां भगवद् रस का पान करने वाले को बुढ़ापा, वेदना, ताप, तृष्णा का सामना नहीं करना पड़ता और स्वर्ग का सुख मिलता है-

घटै न घटता आव प्राणी, जूरा जीव न झंपही।
बाव वेदन नाहिं व्यापै, काया काल न कांपही॥
जिस ताप सीव न रोज तिसना, दया कर मेटो दई।
कह केसो करो क्रिया, स्वर्ग सुख पावो सही॥⁴⁴

संदर्भ ग्रन्थ सूची:

1. मानक हिन्दी कोष, धीरेन्द्र वर्मा, पृ. 188
2. शांडिल्य भक्ति सूत्र, 1-1-2
3. अष्टछाप वार्ता, श्री हरिराम, पृ. 18
4. भक्ति के लक्षण, स्वामी विवेकानन्द, पृ. 1

5. कल्याण भक्ति अंक (2014) पृ. 72, भक्ति का स्वरूप- श्री शरणानन्द जी
6. मध्यकालीन हिन्दी सन्त विचार और साधना, डॉ. केशनी प्रसाद चौरसिया, पृ. 355
7. जम्भवाणी-मूल संजीवनी व्याख्या, डॉ. किशनराम बिश्रोई, पृ. 405-406
8. प्रह्लाद चरित्र (संपा.) कृष्णानन्द आचार्य, पृ. 6
9. वही, पृ. 7
10. वही, पृ. 109
11. वही, पृ. 8
12. कबीर ग्रन्थावली, साध का अंक, पृ. 1
13. साखी भावार्थ प्रकाश, (संपा.) कृष्णानन्द आचार्य, पृ. 241
14. वही,
15. सन्त सुधासार, नामदेव महाराज, पृ. 46
16. कबीर ग्रन्थावली, पृ. 45, 393
17. जम्भवाणी- मूल संजीवनी व्याख्या, डॉ. किशनराम बिश्रोई, पृ. 412
18. साखी भावार्थ प्रकाश, (संपा.) कृष्णानन्द आचार्य, पृ. 262
19. बिश्रोई सन्तों के हरजस, (संपा.) कृष्णानन्द आचार्य, पृ. 54
20. वही, पृ. 262
21. वही, पृ. 59
22. मध्यकालीन हिन्दी सन्त: विचार और साधना, डॉ. केशनी प्रसाद चौरसिया, पृ. 434
23. मलूकदास की वाणी, पृ. 36
24. वील्हो जी की वाणी, (संपा.) कृष्णलाल बिश्रोई, पृ. 137/35
25. बिश्रोई सन्तों के हरजस, (संपा.) कृष्णलाल बिश्रोई, पृ. 51
26. साखी भावार्थ प्रकाश, (संपा.) कृष्णानन्द आचार्य, पृ. 231
27. दादू की वाणी, साध का अंग, 1
28. साखी भावार्थ प्रकाश, (संपा.) कृष्णानन्द आचार्य, पृ. 229
29. वही, पृ. 258
30. सन्त सुधासार, पृ. 253
31. प्रह्लाद चरित्र, (संपा.) कृष्णानन्द आचार्य, पृ. 107
32. वही, पृ. 35
33. वही, पृ. 50
34. वही, पृ. 58

35. वही,
36. कबीर ग्रन्थावली, पृ. 50/9
37. बिश्नोई सन्तों के हरजस, (संपा.) कृष्णानन्द आचार्य, पृ. 49
38. वही, पृ. 52
39. कबीर ग्रन्थावली, पृ. 177/26
40. दादूदयाल की बानी, भाग-2, पद 12
41. प्रहलाद चरित्र (संपा.) कृष्णानन्द आचार्य, पृ. 80
42. बिश्नोई सन्तों के हरजस, (संपा.) कृष्णलाल बिश्नोई, पृ. 47
43. कबीर ग्रन्थावली, रस को अंग, 1
44. साखी भावार्थ प्रकाश, (संपा.) कृष्णानन्द आचार्य, पृ. 248